लोकसंग्रही समाजचिन्तक गौतम बुद्ध एवं उनकी प्रासंगिकता

डॉ0 सुधीर कुमार राय*

सिद्धार्थ से बुद्ध बनना एक युगान्तकारी घटना है। सिद्धार्थ द्वारा देखे गये चार दृश्यों से उपजी करुणा तथा संसार दुःखमय है, के भाव ने सांसारिक बन्धनों से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त कर दिया। दुःखों का कारण तथा उनसे निवारण के उपाय जानने हेतु सिद्धार्थ का घर–त्याग कर निकलना बौद्ध धर्म में 'महाभिनिष्क्रमण' कहा जाता है। अब सिद्धार्थ गौतमबुद्ध हो चुके हैं। गौतमबुद्ध का समग्र चिन्तन मानवता, करुणा, दया, शान्ति तथा अहिंसा पर आधारित है। मानवमात्र का कल्याण उनका अन्तिम उद्देश्य है। एक धर्म के रूप में बौद्ध धर्म की महत्ता उसके सामाजिक समरसता तथा समता सम्बन्धी विचारों के कारण ही है। इसका विस्तार दुनिया के व्यापक क्षेत्र में है। क्षेत्र–व्याप्ति के आधार पर यह विश्वधर्म के रूप में भी जाना जा सकता है और इस धर्म के केन्द्र–बिन्दु हैं– गौतम बुद्ध। प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य है, लोकसंग्रही अर्थात् लोककल्याणकारी चिन्तक के रूप में गौतम बुद्ध एवं उनकी प्रासंगिकता का विश्लेषण करना।

गौतम बुद्ध का जन्म छठीं शताब्दी ईसा पूर्व में कपिलवस्तु गणराज्य के लुम्बिनी ग्राम (वन) में हुआ माना जाता है।[1] यह काल दार्शनिक चिन्तन का युग था। बौद्ध साहित्य में बुद्ध के समकालीन कुछ महत्त्वपूर्ण आचार्यों का उल्लेख प्राप्त होता है, जो तत्कालीन समाज को अपने मतों से प्रभावित कर रहे थे। इन आचार्यों में निगंठ नातपुत्त, मक्खली गोसाल, अजित–केश कंबली, संजय वेलट्ठिपुत्त एवं पकुध कच्चायन मुख्य थे। इन्होंने भिन्न–भिन्न प्रकार से अपने चिन्तन को प्रस्तुत किया।[2] गौतम बुद्ध ने भी अपना एक चिन्तन प्रस्तुत किया, जो ''बहुजनहिताय'' सिद्ध हुआ। गौतम बुद्ध का जन्म शाक्य गण प्रमुख के पुत्र के रूप में हुआ। इनका प्रारम्भिक जीवन सम्पन्नता में व्यतीत हुआ।[3] किन्तु प्रारम्भ से ही सांसारिकता में इनका मन नहीं लगा। यह देखकर पिता ने उनके लिए तीन ऋतुओं में विलास योग्य तीन प्रासाद बनवा दिए।[4] यशोधरा से उनका विवाह करा दिया। कई प्रकार के नृत्य–संगीत के प्रबंध करा दिए, लेकिन नियति तो कुछ और ही थी। चार बार जब वह राजमहल से बाहर निकले, तो उन्हें चार दृश्य दिखाई दिये।[5] प्रथम दृश्य में उन्हें एक जरा–जीर्ण मनुष्य मिला और उन्हें अनुभव हुआ कि वह भी बुढ़ापे का शिकार हो सकते हैं;

एसोशिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र–विभाग, उदय प्रताप स्वायत्तशासी महाविद्यालय, वाराणसी।

द्वितीय दृश्य में उन्हें एक रोग–जर्जर व्यक्ति मिला और उन्हें लगा कि वह भी रोगग्रस्त हो सकते हैं; तृतीय दृश्य में उन्हें एक शव दिखाई दिया और उन्हें ज्ञात हुआ कि मृत्यु का ग्रास वह भी बनेंगे; चतुर्थ दृश्य में उन्हें एक संन्यासी मिला, जिसका चेहरा शांत था और जिसने धर्म के गूढ़ सत्य को पाने वालों का परम्परागत रास्ता अपनाया हुआ था। बुद्ध ने निश्चय किया कि उस संन्यासी का मार्ग अपनाकर वह भी जरा, रोग, मृत्यु रूपी दुःख से छुटकारा पायेंगे। उस संन्यासी ने बुद्ध से कहा– ''हे नर श्रेष्ठ मैं श्रमण हूँ, एक संन्यासी हूँ, जिसने जन्म और मरण के भय से, मोक्ष पाने हेतु, प्रव्रज्या ग्रहण की है।'' इन दृश्यों ने गौतम के वैराग्य को और भी बढ़ा दिया। यशोधरा से उत्पन्न अपने पुष को उन्होंने राहुल की संज्ञा दी। अन्ततः 29 वर्ष की अवस्था में इन समस्त सांसारिक बंधनों को त्याग कर वह सत्य की खोज हेतु घर से निकल गये।[6] वह दुःख का कारण और दुःख को दूर करने के उपाय जानना चाहते थे। ज्ञान की खोज में वह अनेक लब्धप्रतिष्ठ आचार्यों के सम्पर्क में आये, किन्तु इनकी ज्ञान–पिपासा शान्त नहीं हुई।[7] छः वर्ष तक कठिन तपस्या करने के बाद भी जब उन्हें सत्य का साक्षात्कार नहीं हुआ तब उनको कठोर कायाक्लेश का मार्ग उपादेय नहीं लगा। उन्होंने ''मध्यममार्ग'' को उचित समझा। उन्होंने पुनः साधारण जीवन धारण किया, निरंजना नदी के जल (आज की फलक नदी) से स्नान किया तथा श्रेष्ठी कन्या सुजाता द्वारा प्रदत्त खीर को ग्रहण कर उन्होंने पुनः समाधि लगायी। बोधगया में बोधि वृक्ष के नीचे सात सप्ताह की समाधि के पश्चात् अन्ततः उन्हें सम्बोधि की प्राप्ति हुई।[8] इस सम्बोधि प्राप्ति के पश्चात् बुद्ध अपना उल्लेख प्रथम पुरुष सर्वनाम ''तथागत'' से करने लगे। ''तथागत'' का अर्थ है, वह जो सत्य तक पहुँचा है। यह सम्बोधि एक जन्म की उपलब्धि नहीं थी, बल्कि कई जन्मों में की गयी साधनाओं और पारमिताओं की सिद्धि थी। दान, शील, नैष्क्रम्य, सत्य, अधिष्ठान, मैषी, उपेक्षा, वीर्य, शान्ति एवं प्रज्ञा आदि नैतिक एवं आध्यात्मिक गुणों की पराकाष्ठा बौद्ध धर्म में 'पारमिता' कहलाती है।[9] पूर्व जन्म में पूर्ण की गई पारमिताओं के परिणामस्वरूप यह बुद्ध का अन्तिम जन्म था, जिसकी परिणति थी– निर्वाण। किन्तु इस जन्म में भी सम्बोधि रूपी निर्वाण को प्राप्त करने हेतु उन्होंने कठिन प्रयास किया।

यह घटनाएँ तो बुद्ध के व्यक्तिगत जीवन की घटनाएँ थीं। उनकी समाजोन्मुखता तो वास्तव में उनके ज्ञान प्राप्ति (सम्बोधि) के बाद शुरू होती है। द्वन्द्व मानव स्वभाव का एक आवश्यक गुण होता है, और अभी यह द्वन्द्वरूपी संघर्ष बुद्ध के मन में व्याप्त था। सम्बोधि प्राप्ति के पश्चात् बुद्ध के समक्ष दो विकल्प थे– पहला विकल्प था कि जिस सत्य का उन्होंने अनुभव किया, उससे वह स्वतः ही आनन्दित हों। दूसरा विकल्प था कि वह इस सत्य एवं ज्ञान को जन–जन तक पहुँचाएँ। ब्रह्मा के सुझाव पर बुद्ध ने द्वितीय मार्ग का अनुसरण किया[10] तथा वाराणसी के ऋषिपत्तन मृगदाव जो आज का सारनाथ है, में अपना प्रथम धर्मोपदेश अपने पाँच पूर्व साथियों को दिया। जिन्होंने उनका साथ छोड़ दिया था। यह भिक्षु पंचवग्गिय भिक्षु कहलाये तथा यह घटना 'धर्मचक्रप्रवर्तन'' के नाम से ख्यात हुई। बुद्ध के उपदेशों से प्रभावित होकर काशी के एक धनी व्यापारी के पुत्र यश ने अपने

मित्रों एवं परिजनों के साथ बौद्ध धर्म में प्रव्रज्या ग्रहण किया।[11] इसी घटना से काशी में ही ''प्रथम बौद्ध संघ'' की स्थापना भी हुई। ''ये धम्मा हेतुप्पभवा तेसं हेतुं तथागतों आह। तेसं च यो निरोधो एवंवादी–महासमणों'' अर्थात् जो धर्म हेतु प्रभव हैं उसके हेतु एवं निरोध का तथागत ने उपदेश दिया है। यह गाथा बौद्धों में अत्यन्त प्रसिद्ध हुई, क्योंकि अश्वजित द्वारा प्रदत्त बुद्ध उपदेश के इसी सार ने सारिपुत्त और मौद्गल्यायन को बुद्ध का शिष्य बनने के लिए प्रेरित किया।[12] बौद्ध संघ चतुर्विध माना जाता था– भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका इसके मुख्य अंग होते थे। बुद्ध ने सम्बोधि के पश्चात् लगभग 45 वर्षों तक अपने उपदेशों का प्रचार किया, जिससे बौद्ध धर्म का अत्यधिक प्रचार हुआ और बौद्ध संघ सुदृढ़ हुआ। कालान्तर में भिक्षुओं–भिक्षुणियों, व्यापारियों एवं राजाओं के प्रयास से बौद्ध धर्म भारतीय सीमा से बाहर निकल कर अफगानिस्तान, मध्य एशिया एवं दक्षिण तथा दक्षिण पूर्व एशिया के विविध देशों में पहुँचा। सम्प्रति श्रीलंका, बर्मा और थाईलैण्ड आदि थेरवादी बौद्ध धर्म को मानने वाले देश हैं। जबकि नेपाल, तिब्बत, कोरिया, चीन और जापान महायान परम्परा से प्रभावित देश हैं। इस प्रकार दुनिया के एक बड़े हिस्से में बौद्धधर्म का प्रसार है।

बुद्ध के पंथ के तीन अंग है– बुद्ध, धम्म और संघ। इन तीनों का एक ही उद्देश्य था, मानसिक शान्ति एवं आध्यात्मिक उन्नयन। संघ की स्थापना से सर्वाधिक लाभ तो स्त्रियों को हुआ। थेरीगाथा नामक ग्रन्थ में वरिष्ठ भिक्षुणियाँ अपने जीवन के अनुभवों को बताते हुए कहती हैं कि किस प्रकार बुद्ध ने उन्हें मानसिक संत्रास से मुक्त कर शान्ति प्रदान किया।[13] उल्लेखनीय है कि, इनमें से अधिकांश स्त्रियों के जीवन में अनेक समस्याएँ थीं। यथा– वैधव्य, सन्तान वियोग, वृद्धावस्था में उपेक्षा, विवाह में कठिनाई, पति का छल, परिजनों की कुदृष्टि, गरीबी आदि। इन समस्याओं या दुःखों ने उनके अस्तित्त्व के समक्ष संकट उपस्थित कर दिया था। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि बुद्ध स्त्रियों के संघ प्रवेश के विरूद्ध थे। इस संदर्भ में अपने प्रिय शिष्य आनंद के अकाट्य तर्कों से प्रभावित होकर अष्टगुरुधर्मों के साथ बुद्ध ने स्त्रियों को संघ में प्रवेश दिया, साथ ही ब्रह्मचर्य–रक्षा एवं सद्धर्म की चिरजीविता को लेकर संशय व्यक्त किया।[14] बुद्ध की यह दृष्टि कदाचित् उनकी आलोचना एवं स्त्रियों के प्रति उनकी भेदभाव–युक्त विचार के रूप में व्याख्या का शिकार भी होती है। यहाँ भी बुद्ध का लोकसंग्रही चिन्तन ही था, एक तो वह मानव के सहज मनोविज्ञान से परिचित थे, जहाँ अप्राप्य को प्राप्त करने का आकर्षण होता है, अतः वह नैतिकता अर्थात् ब्रह्मचर्य रक्षा को लेकर चिन्तित थे, दूसरे स्त्री–संन्यास से उत्पन्न अन्य समस्याओं का भी उन्हें अवश्य बोध था। भिक्षुणी संघ की स्थापना के बाद भी उनके ये भाव बने रहे। अपने महापरिनिर्वाण के पूर्व आनन्द के पूछने पर कि हमें स्त्रियों के साथ भविष्य में कैसा व्यवहार करना चाहिए, बुद्ध उत्तर देते हैं– अदर्शन (न देखना), अप्रलाप (बातचीत न करना) और यदि बातचीत आवश्यक हो तो स्मृति (मन) को संयत रखना चाहिए।[15] इन सबके बाद भी व्यवहारिक दृष्टि से देखा जाय तो परिवार एवं समाज से उपेक्षित महिलाओं को भिक्षुणी संघ ने एक उत्तम विकल्प प्रस्तुत किया। जहाँ वे सुरक्षित एवं भयमुक्त वातावरण में स्वयं की मुक्ति एवं समाज के उत्थान में क्रियाशील हुईं।

बुद्ध का उपदेश लोक भाषा में होता था क्योंकि उनकी शिक्षा सर्वसाधारण के लिए थी। बौद्ध साहित्य में वर्णन आता है कि किसी समय दो भिक्षुओं ने भगवान् से शिकायत की कि भिक्षु बुद्ध–वचन को अपनी अपनी बोली में परिवर्तित कर रहे हैं। इसीलिए उन्होंने बुद्ध से निवेदन किया कि संस्कृत के प्रयोग की आज्ञा प्रदान की जाय, जिसमें एक भाषा में सारे बुद्ध–वचन सुरक्षित रहें और भिन्न–भिन्न प्रदेश के भिक्षु अपनी इच्छा के अनुसार बुद्ध वचन को परिवर्तित रूप न दे सकें। किन्तु बुद्ध ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया और कहा कि मैं भिक्षुओं को अपनी–अपनी भाषा के प्रयोग की अनुमति देता हूँ।[16] यह कृत्य भाषा के प्रति उनके व्यावहारिक चिन्तन का परिणाम था।

बुद्ध का भारतीय समाज में सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवदान, उनका दार्शनिक–चिन्तन है। उन्होंने शाश्वतवाद एवं उच्छेदवाद के मध्य का चिन्तन प्रस्तुत किया तथा कठोर तप और भौतिकता दोनों के मध्य को ही व्यवहारिक मार्ग बताया, यही उनका ''मध्यममार्ग'' था। साथ ही बुद्ध ने एक ऐसे आचार मार्ग का उपदेश दिया जो न केवल भिक्षुओं बल्कि गृहस्थों के लिए भी उतना ही आवश्यक था। बुद्ध का यह मध्यम मार्ग आचार की दृष्टि का आष्टांगिक मार्ग है। बुद्ध यह कभी नहीं कहते कि मुझ पर श्रद्धा रखकर बिना समझे ही मेरे धर्म को मानो। बुद्ध सबको निमंत्रण देते हैं कि आओ और देखो, इस धर्म की परीक्षा करो। वह समाज में व्याप्त धर्म मंगलों (तिथि, मुहुर्त आदि) के स्थान पर माता–पिता की सेवा, दान, धमचर्या, तप, ब्रह्मचर्य, आर्यसत्यों का दर्शन, निर्वाण का साक्षात्कार आदि को उत्तम मंगल बताते हैं। राग, द्वेष और मोह को वे तीन अकुशल मानते थे। मैत्री भावना का वर्णन करते हुए बुद्ध कहते हैं– ''.....एक भी प्राणी में दुष्ट चित्त नहीं होना चाहिए। सबके लिए मैत्री का भाव होना चाहिए। जिसका किसी से बैर नहीं, जो सब भूतों से मैत्री करता है, वह सुखी होता है। उपासकों (गृहस्थों) के लिए पंचशील एवं भिक्षुओं के लिए दशशील का पालन आवश्यक बाते हैं। ये हैं– (1) प्राणातिपात–विरति, (2) अदत्तादान से विरति, (3) अब्रह्मचर्य से विरति, (4) मृषावाद से विरति, (5) सुरामद्यमैरेय से विरति, (6) अकाल भोजन से विरति, (7) नृत्य गीत–वादित्र से विरति, (8) माल्यगन्ध–विलोपन से विरति, (9) उच्चासनशयन से विरति, (10) जातरूपरजत प्रतिग्रह से विरति। इनमें से प्रथम पाँच उपासकों के लिए था।[17] भिक्षुओं को सम्पूर्ण का पालन करना था। भावों के सम्प्रेषण हेतु सम्पर्कों का होना आवश्यक है, अतः उपासकों को चार तीर्थों की यात्रा (कपिलवस्तु, बोधिगया, सारनाथ, कुसिनारा) का विधान करते हैं।

बुद्ध के उपदेशों का उद्देश्य था समाज में दोषों का निराकरण कर एक स्वस्थ समाज की रचना करना। कदाचित उनका यह भी उद्देश्य रहा होगा कि स्वस्थ समाज की स्थापना के लिए आवश्यक प्रतिरोध को उत्पन्न किया जाय। अतः उन्होंने याज्ञिक हिंसा एवं यज्ञ के नाम पर प्रचलित आडंबर, अंधविश्वास की आलोचना किया। पशुबलि को निष्फल बताया।[18] ऐसे वैदिक अनुष्ठानों के प्रति अनास्था प्रकट की। इसी अवदान के कारण बुद्ध को वैष्णवों ने अपने अवतार सूची में सम्मिलित किया। विष्णु के बुद्धावतार का उद्देश्य यज्ञ में पशु बलि का निषेध तथा विधर्मियों को वेद अध्ययन से विरत करना था।[19]

उन्होंने जातिगत विषमता का पुरजोर विरोध किया। वे मानते थे कि ''जन्म से कोई वृषल (शूद्र) नहीं होता; जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता। कर्म से वृषल होता है और कर्म से ब्राह्मण होता है। हे! ब्राह्मण इस इतिहास को जानो कि यह विश्रुत है कि चाण्डाल पुत्र (श्वपाक) मातंग ने परम यश को प्राप्त किया। यहाँ तक कि अनेक क्षषिय और ब्राह्मण उसके स्थान पर जाते थे। अन्त में वह ब्रह्मलोक को प्राप्त हुआ। ब्रह्मलोक की उपपत्ति में जाति–बाधक नहीं है।[20] एक अन्य प्रसंग में बुद्ध कहते हैं– ''मां जातिं पुच्छ चरणं च पुच्छ'' जाति मत पूछो आचरण पूछो।''[21] अपने सहज, सरल उपदेशों के माध्यम से उन्होंने एक शोषण मुक्त समाज को स्थापित करने का प्रयास किया जिसके मूल में था मनुष्य की स्वतंत्रता, समता एवं बंधुत्व की भावना तथा समस्त जीव जगत के प्रति करुणा का भाव। यही मोक्ष का मार्ग था। इसी की खोज उन्होंने चार आर्य सत्य के रूप में किया था, जिसे प्रतीत्य–समुत्पाद, आर्य अष्टांगिक मार्ग, ब्रह्म विहारों, पंचशील एवं शिक्षापदों के माध्यम से प्रस्तुत किया।

बुद्ध ने कभी यह दावा नहीं किया कि वह एक नया धर्म घोषित कर रहे हैं। वह भारतीय आर्य सभ्यता के पुराने आदर्शों को एक नई अर्थ–महत्ता के साथ उपस्थित कर रहे थे। बुद्ध कहते हैं– ''अतः भिक्षुओं, मैंने एक प्राचीन राह देखी है, एक ऐसा प्राचीन मार्ग जो पुरातन काल के पूर्ण जागरितों द्वारा अपनाया गया था....उसी मार्ग पर मैं चला और उस पर चलते हुए मुझे कई तत्त्वों का रहस्य मिला। वहीं मैंने भिक्षुओं, भिक्षुणियों, नर–नारियों और दूसरे सर्वसाधारण अनुयायियों को बताया। अतः आवुसों, इसी प्रकार यह ब्रह्म चिंतन, ब्रह्मचर्य जो कि इतना फला–फूला और सब देशों में सबको सुपरिचित हुआ, लोकप्रिय बना....।[22] इस प्रकार बुद्ध का यह कृत्य अपने समाज में प्रचलित थीसिस के समक्ष एण्टीथीसिस था। जिसे समाज ने स्वीकार किया। फलतः थीसिस एण्टीथीसिस की समन्वित अभिव्यक्ति सिन्थीसिस के रूप में हुई, जो कालान्तर में परिवर्तन का कारक बनी। यह परिवर्तन बनी हुई व्यवस्था द्वारा सहज स्वीकार नहीं कर लिया गया। बुद्ध के चमत्कारी प्रभाव को देखकर कई ब्राह्मणों ने और अन्य सम्प्रदायवादियों बुद्ध के विरूद्ध कई षडयन्ष रचे। चिंचा नाम की एक वेश्या को बुद्ध को प्रलोभन में डालने एवं उनकी छवि धूमिल करने हेतु नियोजित किया गया। यह प्रयास बुद्ध के व्यक्तित्त्व के समक्ष विफल हुआ।[23]

इस प्रकार सामाजिक सुधार हेतु निरंतर धर्म उपदेशों के माध्यम से एक सक्रिय जीवन व्यतीत करते हुए अस्सी वर्ष की आयु में[24] कुसीनारा जो आज का कुशीनगर है, में बुद्ध का महापरिनिर्वाण हुआ, किन्तु वह तो केवल बुद्ध के शरीर का अवसान था, बुद्ध तो एक विचार है, जो अपने उपदेशों के माध्यम से आज भी मौजूद है। महापरिनिर्वाण के पूर्व बुद्ध ने भिक्षुओं को ''अत्तदीपो भव'' अर्थात् अपना दीपक स्वयं बनो के सूत्र वाक्य की शिक्षा दी तथा भविष्य में अपने उपदेशों को ही भिक्षुओं का मार्ग–दर्शक बताया। बुद्ध के उपदेशों का सार है– आत्मचेतना का विकास, उद्देश्य प्राप्ति के लिए अथक परिश्रम शान्ति तथा अहिंसा। वर्तमान परिस्थितियों में विश्व के कल्याणार्थ यह समस्त विचार अत्यन्त आवश्यक है, अतः आज भी बुद्ध नितान्त प्रासंगिक है।

संदर्भ :

1. पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, लखनऊ, तृतीय संस्करण, 1990, पृ0 43
2. आचार्य नरेन्द्र देव, बौद्धधर्म–दर्शन, वाराणसी, 1993, पृ0 3–4
3. एडवर्ड, जे0 टामस, दि लाइफ ऑव बुद्ध, पृ0 38–50
4. बापट, पी0वी0 (संपादक), बौद्धधर्म के 2500 वर्ष, दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2008, पृ0 5
5. वही, पृ0 5
6. पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र, पूर्वनिर्दिष्ट, 1990, पृ0 44
7. वही, पृ0 44–50
8. बापट, पी0वी0 (संपादक), बौद्धधर्म के 2500 वर्ष; भूमिका, डॉ0 राधाकृष्णन्, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण 2008, पृ0 टपपप (भूमिका); राहुल सांकृत्यायन, बुद्धचर्या, वाराणसी, 1988, पृ0 13–16
9. शर्मा, अर्चना, दान से दानपारमिता तक, बौद्धधर्म में दान के विविध आयाम, वाराणसी, 2010, पृ0 2–6
10. आचार्य नरेन्द्र देव, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ0 5
11. सांकृत्यायन, राहुल, पूर्वनिर्दिष्ट, यश, संन्यास, पृ0 25–28
12. पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ0 55
13. थेरीगाथा, अनुवादक एवं संपादक, डॉ0 विमलकीर्ति, नई दिल्ली, 2003, इसमें 16 वर्गों में 73 थेरियों की गाथाएं संकलित हैं; अरुण प्रताप सिंह, जैन और बौद्ध भिक्षुणी–संघ (एक तुलनात्मक अध्ययन), वाराणसी, 1986, पृ0 15–18
14. सांकृत्यायन, राहुल, पूर्वनिर्दिष्ट, यश, पृ0 55–63
15. वही, पृ0 603
16. आचार्य नरेन्द्र देव, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ0 25
17. वही, पृ0 16–19
18. ब्रह्मजाल सुत्त, दीघनिकाय (1/1), कूटदत्त सुत्त, दीघनिकाय (1/5), उद्धृत भरत सिंह उपाध्याय, पालि–साहित्य का इतिहास, इलाहाबाद, छठां संस्करण, 2000, पृ0 174–179; गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ0 57
19. भागवत महापुराण, 1.3.24, 3.7.37, 10.40.22
20. आचार्य नरेन्द्रदेव, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ0 14
21. वही, पृ0 15
22. बापट, पी0वी0 (संपादक), पूर्वनिर्दिष्ट, भूमिका, पृ0 ग्प
23. वही, पृ0 7
24. महापरिनिब्बाण–सुत्त, उद्धृत राहुल सांकृत्यायन, बुद्धचर्या, पृ0 532; गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ0 58